International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 4, May-June 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में आदिवासी समुदाय का चित्रण

राम किशोर माली[1], डॉ. रमेश चंद मीणा[2]

[1]शोधार्थी हिंदी विभाग, राजकीय महा विद्यालय, बूंदी (कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान)
[2]सह आचार्य एवं शोध पर्यवेक्षक, हिंदी विभाग, राजकीय महा विद्यालय, बूंदी (कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान)

ABSTRACT

नई सदी में आदिवासी विमर्श व चिंतन साहित्य एवं समाज के लिए चर्चित विषय बना हुआ है। आदिकाल से ही आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज मानकर उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है। परंतु वर्तमान शिक्षा के प्रचार-प्रसार, शोषणकारी नीतियों के विरूद्ध सामाजिक व साहित्यिक आंदोलनों से आदिवासी समाज में भी जागृति आयी है। आदिवासी साहित्य आदिवासी व गैर आदिवासी साहित्यकारों के द्वारा प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है जिससे आदिवासियों के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। आदिवासी जीवन, रहन-सहन, परम्पराओं एवं सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर साहित्य की प्रत्येक विधा में लेखन कार्य हो रहा है। आदिवासियों को मुख्य समाज द्वारा जंगली, बर्बर, मूर्ख, भोला आदि की संज्ञा दी जाती है जिससे उनमें स्वयं के अस्तित्व व जीवन व्यवस्थाओं के प्रति हीन भावना विकसित हो जाती है। आदिवासी साहित्य उन्हें इस हीन ग्रंथि से मुक्त कराने का हथियार तो है ही साथ ही उनमें चेतना जागृत करने का प्रमुख स्त्रोत है व आत्मविश्वास जगाने का जरिया भी है।

बीज शब्द: *आदिवासी, जनजाति, समाज, संस्कृति, आदिवासी साहित्य, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति।*

How to cite this paper: Ram Kishore Mali | Dr. Ramesh Chand Meena "Illustration of Tribal Community in the Fiction of Madhu Kankaria" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-4, June 2022, pp.793-797, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd50194.pdf

IJTSRD50194

Copyright © 2022 by author(s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

आदिम जातियों और जनजातियों के लिए 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से ही किया जाता रहा है। इन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति की धरोहरों को युगों से संजोया हुआ है इसीलिए ये राष्ट्र के असली वारिस कहे जा सकते हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास में इनकी भूमिका मुख्यधारा से अधिक प्राचीन व वास्तविक है। फिर भी आज ये लोग मुख्य धारा से विलग अस्तित्व की पहचान के संकट से जूझ रहे हैं। इसका कारण वर्तमान विकासवादी प्रक्रिया के साथ ही इनका अंधविश्वास, जड़ता व रूढ़िवादी परंपराएँ रही है। यह समाज आज भी अभावग्रस्त रूप से मुख्य समाज से दूर पहाड़ों व दूरदराज के इलाकों में आधुनिक सुख-सुविधाओं के अभाव में दमन व शोषणकारी परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहा हैं।

आदिवासी कौन है यह प्रश्न वर्षों से विचार-विमर्शों और संगोष्ठियों का मुख्य विषय रहा है। विनायक तुकाराम के अनुसार "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगल, पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दु:ख तथा नष्ट हुए संसार पर दु:ख प्रकट किया जाता है। उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोड़कर बोला जाता है।"[1]

आज़ादी से पहले और तब से लेकर आज तक आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, जंगलों से खदेड़ा जाना, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस प्रशासन की जातियां आदि है।

सरकार द्वारा अपनाए गये विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और ज़मीन छीनकर उन्हें बेदखल तो किया ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। इस प्रक्रिया में उनके सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान व अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है तथा प्रकृति का अपमान उनके लिए असहनीय है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी विमर्श और चिंतन की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन शैली प्रकृति के साथ तालमेल पर आधारित हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "हम प्रकृति पर कब्जा नहीं करना चाहते न उस पर अपना वर्चस्व जताना चाहते हैं। हम साथ-साथ जीने में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं।"[2] आदिवासी समाज को मुख्यधारा का समाज हमेशा से हेय दृष्टि से देखता रहा हैं। समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ और अधिकतर साहित्यकार भी अपने पूर्वाग्रहों के चलते अकसर आदिवासी समाज के स्वरूप पर चर्चा करते हुए इनके समाज की सही पड़ताल नहीं कर पाते। आदिवासी समाज का अपना एक अलग जीवन और संसार हैं। उनके समाज की एक अलग सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना हैं। इसकी एक प्राचीन परंपरा रही हैं। अपने समाज को चलाने, अपनी संस्कृति को समृद्ध करने और जीवन के लोकरंग के उनके अपने मानदंड हैं। यह समाज जीवन को बिना किसी दिखावे और बनावटीपन के सहज एवं सरल रूप में जीता हैं साथ ही विविधता से भरी संस्कृति के आलोक में ही जीवन संचालित करता है।

समानता और स्वतंत्रता के भाव आदिवासी समाज में स्थायी रूप से देखने को मिलते हैं। आदिवासी समाज में स्त्री को मुख्यधारा के समाज की तरह बाँधकर नहीं रखा जाता उसे पुरुष समान ही स्वतंत्रता प्राप्त है। आदिवासी समाज में अपने पूर्वजों को ही देवता के रूप में स्थापित किया जाता है। आदिवासी समुदाय का कोई विशेष धर्म नहीं हैं। धार्मिक मामलों में भी आदिवासी समाज में आडंबर मुख्यधारा के समाज की अपेक्षा कम है। बहुत सारे धार्मिक स्थलों पर जो लूट और जनता का शोषण देखने को मिलता है उसका आदिवासी समाज में अभाव है। आदिवासी समाज के धार्मिक कर्मकांड भी अधिकांशत: प्रकृति से जुड़े होते हैं। वृक्ष की पूजा आदिवासियों में प्रचलित है। प्रकृति आदिवासी समाज के धर्म और दर्शन दोनों के केंद्र में है।

आदिवासियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति वर्तमान समय में अत्यधिक शोषणकारी होती जा रही है। वैसे तो अंधविश्वास हर तरह के समाज में व्याप्त है। शिक्षित व्यक्ति हो या अशिक्षित; सभी किसी न किसी अंधविश्वास के शिकार होते हैं। लेकिन आदिवासी समाज में ज्यादातर अंधविश्वास उनकी संस्कृति का अंग होते हैं। झाड़-फूंक, जादू-टोना जैसे अंधविश्वास भी आदिवासी समाज में व्याप्त हैं।

मधु कांकरिया को मिला कथाक्रम सम्मान

रमणिका गुप्ता ने आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का निरीक्षण करते हुए लिखा है "जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों पर खरीदकर उच्चें दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाय पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।"[3] आदिवासी अर्थव्यवस्था वन प्रधान थी परंतु स्वतंत्रता के बाद जंगलों की कटाई तेजी से होने लगी। "सरकार ने विकास के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाए जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए। हमारे देश की विकास नीति का लक्ष्य होना चाहिए था विकास में सबको समान अधिकार की प्राप्ति, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विकास तो हुआ, पर कुछ चुनिंदा लोगों का, असंख्य लोगों की कीमत पर। खासकर आदिवासियों की कीमत पर। राष्ट्रीयता के नाम पर आदिवासी लोगों की जमीन अधिग्रहित कर उन्हें विस्थापित ही नहीं किया गया बल्कि उसके संदर्भ में संविधान में प्राप्त मूल अधिकारों का उल्लंघन भी किया गया। इन विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी प्रदेशों अथवा क्षेत्रों का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ गया।"[4] सरकार के द्वारा कई योजनाएँ बनाई जाने लगीं जिससे वे अपने वनों, जंगलों से खदेड़ दिए गए। आदिवासियों को गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, अंधविश्वास, बेरोजगारी आदि कई मुसीबतें झेलनी पड़ रही हैं।

विचार-विमर्श

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के साथ ही आदिवासियों की शिक्षा की भी बदतर स्थिति है। आदिवासी समाज के विकास में शिक्षा की भूमिका निर्णायक है परंतु मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था से आदिवासियों का कोई भला नहीं हो सकता है क्योंकि जो शिक्षा उन्हें दी जा रही है वह मुख्यधारा से संबंधित है। इसलिए आवश्यक है कि आदिवासियों को शिक्षा उनकी भाषा में दी जाए जिससे अधिगम की सुगमता का विकास हो सके। आदिवासियों के लिए उस शिक्षा या विकास का कोई मतलब नहीं जिसमें उसकी सहभागिता ना हो। अतः शिक्षा से संबंधित इस चुनौती पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए जिससे सार्थक समाधान की तलाश की जाये।

आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी अस्मिता के संकट को लेकर चिंता व्यक्त की है। मधु कांकरिया लिखती है कि "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे परन्तु आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया है।"[5] आदिवासियों ने साहित्यकारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। आदिवासियों के प्रति जो धारणा बनी हुई थी कि यह जनजाति असभ्य, बर्बर है। इस अवधारणा के प्रति तीव्र विरोध का भाव समाजचिंतकों, साहित्यकारों, इतिहासवेत्ताओं ने प्रकट किया है। वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासियों को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, व्यंग्य आदि विधाओं में रचनाएँ की है जिसमें आदिवासियों के निवास स्थान, इनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति आदि को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी साहित्य दुनिया का सबसे पुराना व जीवंत साहित्य है। आदिवासियों के उन्नयन के लिए लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है चाहे उसे कोई भी लिख रहा हो।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में नये सामाजिक आंदोलनों का जो उभार व विस्तार हुआ उनमें आदिवासियों, स्त्रियों, दलितों, किसानों और अन्य जनजातियों की ऐसी माँगो और सैद्धांतिक मुद्दों को उठाया गया है जिससे सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर इन समुदायों के विकास के प्रश्नों को आसानी से सुलझाने के प्रयास सक्रिय हो पाए हैं। वंचितों के शोषण और भेदभाव के खिलाफ उठी इस मुहीम में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के अलावा साहित्यिक आंदोलन ने भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। आदिवासी साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य व दलित साहित्य उसी का प्रतिफल है। आदिवासी साहित्य में आदिवासी लोक की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था, रीति-रिवाजों, परंपराओं, कलाओं व प्रथाओं का वास्तविक चित्रण मिलता है। साथ ही इससे आदिवासियों के शोषण की वास्तविक स्थिति भी समाज के सम्मुख उजागर हुई है जिसने आदिवासी चेतना को जागृत किया है। आदिवासी साहित्य अपनी प्रारंभिक निर्माण अवस्था में है फिर भी यह लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। साहित्य की प्रत्येक विधा में आदिवासी चिंतन व विमर्श को स्थान मिला है। ग़ैर-आदिवासी साहित्यकार व आदिवासी साहित्यकारों ने इस दिशा में सतत प्रयास जारी रखे हैं। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में आदिवासी जीवन व समाज की जीवंत प्रस्तुति की गई है। आदिवासी रचनाकारों ने अपनी मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ लेते हुए इस क्षेत्र में अधिक मौलिक सृजन करने का प्रयास किया है। इन्होंने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष को अपना मुख्य हथियार बनाया है।

आदिवासी साहित्य में आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता हैं। आदिवासी साहित्य स्वांत सुखाय नहीं लिखा जाता बल्कि यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक एवं विस्तृत है। संसार में जहाँ-जहाँ आदिम समूह रहते हैं उनसे सम्बन्धित सारा साहित्य आदिवासी साहित्य में समाविष्ट है। यह साहित्य अव्यक्त वेदना संसार का दर्शन कराने वाला व नये जागरण का उषासूक्त है। "आदिम भारत के नव निर्माण का स्वप्न बीज आदिवासी साहित्य के बहाने अंकुरित हो रहा है। पहाड़ों की गोद में और कँटीली झाड़ियों में, बस्ती-बस्ती में जिनके जीवन का हर क्षण शृंखलाबद्ध हुआ है। यह साहित्य ऐसे ही जंगलवासियों को मुक्ति की आशा दिलाने वाला है।"[6] ग़ैर-आदिवासी समाज जब आदिवासी जीवन को आधार बनाकर साहित्य रचता है तो उसके विचार एवं संस्कार के संक्रमण का भय बना रहता है। इसे मात्र अध्ययन के द्वारा समझना संभव नहीं है। इसके लिए आदिवासी समाज के साथ रहना और जीना आवश्यक है

आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुकाराम कहते हैं "आदिवासी साहित्य वन, संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वनों, जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि-कन्दराओं में रहने वाले अन्यायग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ो पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया उस आदिम समूह का मुक्ति साहित्य है। आदिवासी साहित्य वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"[7] प्रो. व्यंकटेश आजाम के अनुसार "जो आदिवासी जीवन से प्रेरणा लेकर लिखा हुआ है वह आदिवासी साहित्य है।"[8] कवयित्री रमणिका गुप्ता के अनुसार "आदिवासी साहित्य मैं उसी को मानती हूं जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा जीवन शैली पर आधारित होना होगा अर्थात आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।"[9]

"आदिवासी दर्शन और साहित्य की अवधारणा है सृष्टि सर्वोच्च नियामककर्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत् तथा प्रकृति सबका अस्तित्व एक समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।"[10] "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये गये और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकट और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[11]

इक्कीसवीं सदी के साहित्य लेखन में आदिवासी विमर्श केंद्र में है। आदिवासी विमर्श में राजनीति और सामाजिक अस्मिता दोनों का समावेश है। आदिवासी साहित्यकारों ने अपने लेखन में दर्शन और संस्कृति का वास्तविक व व्यापक चित्रण किया है जो कि उनके मौलिक मौखिक परंपराओं पर आधारित है। जबकी ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों में आदिवासी साहित्य रचना के नाम पर प्रतिस्पर्धा हो रही है। उनके द्वारा आदिवासी संस्कृति, जीवन और समाज पर जो साहित्य रचा जा रहा है वह प्रचारित, पाठित और वाचिक ही अधिक माना जा सकता है क्योंकि ग़ैर-आदिवासी साहित्यकार आदिवासियों की समस्याओं को आर्थिक संघर्ष के रूप में ही अधिक देखता है। सांस्कृतिक तौर पर आदिवासी दर्शन व संस्कृति को बचाने व उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के प्रयास कम ही किए जा रहे हैं।

आदिवासी साहित्य को समझने के लिए आदिवासियों की जीवन परंपरा, रीति-रिवाज व सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था को समझना आवश्यक है जो कि अत्यधिक समृद्ध है। आदिवासी जीवन और समाज किसी भी प्रकार के शास्त्रीय बंधनों को स्वीकार नहीं करता। आदिवासियों की वास्तविक स्थिति, शोषण व संघर्ष को देखने व समझने के लिए इसकी अंतर्वस्तु एवं स्वरूप को समझना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य में कौन और क्या-क्या समाहित है इसका उत्तर जानना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखा गया वह साहित्य है जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण हो। "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेदभाव व छल कपट से दूर है। वह जमाखोरी या सम्पत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।"[12]

आदिवासी साहित्य जनवादी साहित्य है। इसमें आदिवासी जीवन से संबंधित प्रत्येक विशेषताएँ, मान्यताएँ, लोककथाएँ, मिथक, लोकविश्वास, आदिवासियों की प्रकृति, आदिवासियों का अस्तित्व, आदिवासियों का अन्य मानवेतर प्राणियों के साथ सहअस्तित्व, सामूहिकता की भावना, आदिवासी संस्कृति, नृत्य, गीत, संगीत, आदिवासियों की समस्याएं, आदिवासियों की स्वतंत्रता, जल, जंगल तथा ज़मीन विषयक दृष्टिकोण, अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव आदि आदिवासी के बुनियादी तत्त्व हैं जो दर्शन के अंतर्गत समाहित किये जा सकते हैं। इन तत्त्वों को जिस साहित्य में समाहित किया जाता है वह साहित्य आदिवासी साहित्य है।

परिणाम

आदिवासी साहित्यकारों जैसे- सुशीला सामंत, वंदना टेटे, दुलाय चंद मुंडा, रामदयाल मुंडा, बलदेव मुंडा, वाहरू सोनवने, रोजकेरकेट्टा, हरिराम मीणा, एलिस एक्का, शंकर लाल मीणा, पीटर पौल, वाल्टर भेंगरा, मंजू ज्योत्सना, मंगल सिंह मुंडा, बाबूलाल मुर्मू आदिवासी, शिशिर टुडु, महादेव टोप्पो, महादेव हांसदा, निर्मल मिंज, दयामनी बारला, सुषमा असुर, लक्ष्मण गायकवाड़, शंकर लाल मीणा, मंगल सिंह मुंडा, रमणिका गुप्ता, रणेन्द्र, संजीव, निर्मला पुतुल, राकेश कुमार सिंह आदि ने आदिवासी साहित्य की प्रत्येक विधा पर कलम चलाई है।

आदिवासी साहित्य में मूल स्वर विद्रोह का होता है परंतु इसके साथ ही आदिवासी जीवन की वेदना, संवेदना, आकांक्षा और संभावना को भी साहित्यकार अपने साहित्यिक कृति में अभिव्यक्त करता है। आदिवासी साहित्य केवल आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का साहित्य नही है यह तो आदिवासियों के जीवन संघर्ष से प्रेरित है। आदिवासी साहित्य से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई है। आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुये हैं। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करता है तथा आदिवासी संस्कृति को बचाए रखने में सहयोग देता है। यह आदिवासियों के समक्ष उपस्थित समस्याओं जैसे आर्थिक शोषण, विस्थापन, स्वास्थ्य, गैर आदिवासी समाज के हस्तक्षेप से उत्पन्न समस्या आदि से परिचय करवाता है। आदिवासी साहित्य अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध साहित्य है। आदिवासी समाज अपने हितों व अस्तित्व के लिए लड़ाई वर्षों से लड़ता आ रहा है परंतु कोई विमर्श तभी विमर्श बनता है जब सभ्यता, संस्कृति, भाषा व क्षेत्र की अस्मिता की पहचान हाशिए पर चली जाए। आदिवासी विमर्श आदिवासी साहित्य के संदर्भ में आदिवासियों के अस्तित्व

की रक्षा व जीवन जीने के अधिकार की पैरवी करता है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' का प्रचार-प्रसार तो काफी हुआ लेकिन आदिवासी चिंतन के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रूप में नहीं हुई। विवेचनात्मक रूप से आदिवासी समाज जितना उपेक्षित रहा उतना उनका साहित्यिक विमर्श भी। इसलिए आदिवासी साहित्य को आदिवासी समाज व संस्कृति के धरातल पर विकसित व परिमार्जित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता व संस्कृति को वैश्विक परिदृश्य पर प्रस्तुतकर्ता जनजातीय समाज है जिसने लोक संस्कृति व जीवन को बनाए एवं बचाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज इसी सभ्यता व संस्कृति की पहचान के लिए उसे सरकार व मुख्यधारा से संघर्ष करना पड़ रहा है। जिससे आदिवासी विमर्श की आवश्यकता ने जन्म लिया और साहित्य के क्षेत्र में एक नई विधा आदिवासी साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। आदिवासी वर्ग के उत्थान, जीवन परंपरा व सभ्यता को बनाये रखने के लिए उनमें फैले विषाक्त अंधविश्वास, जड़ता से उनके जीवन को बाहर निकालने की महती आवश्यकता है। साथ ही उनके अधिकारों व आधुनिक सभ्यता, संस्कृति से उन्हें परिचित करवाना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य वर्तमान समय की आवश्यकता है इसीलिए इसकी प्रत्येक विधा पर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लेखन किया जा रहा है जिससे वे स्वयं अपनी सामाजिक-आर्थिक व शैक्षणिक परिस्थिति से अवगत हो सकें तथा अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर अपने विकास की ओर अग्रसर हो सकें।

आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज व संस्कृति संरक्षण में नींव का प्रस्तर है। राष्ट्र निर्माण की नीतियों में जल, जंगल, ज़मीन से बेदखल कर इनके अस्तित्व का जो संकट खड़ा हुआ है उसे सरकार द्वारा इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति व शैक्षणिक स्तर में सुधार कर समायोजित किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य द्वारा ही आदिवासी विमर्श और चिंतन को विस्तृत किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य का महत्त्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों को सम्मान से जीने, उन्हें अपनी पहचान बनाने, अपनी लड़ाई खुद लड़ने, अपने हक तथा अधिकारों के लिए लड़ने, अपने संगठन को बचाये रखने के लिए प्रेरित करता है। आदिवासी साहित्य आदिवासी समुदाय की अस्मिता, संस्कृति तथा संघर्ष के लिए नवीन चेतना जागृत करता है तथा यह साहित्य आदिवासियों को उनके अधिकारों के प्रति सजग कर उनके अस्तित्व को प्रकट करता है।

संदर्भ

[1] उमा शंकर चौधरी (सं.): हासिये की वैचारिकी; विनायक तुकाराम: आदिवासी कौन, 2008, अनामिका पब्लिशर, नई दिल्ली, पृ. 251

[2] गंगा सहाय मीणा (सं.): आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 37

[3] रमणिका गुप्ता: आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 12

[4] रमणिका गुप्ता; (सं.) दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे;: आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, पृ. 357-358

[5] उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.): आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17

[6] रमणिका गुप्ता: आदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 25

[7] वही, पृ. 2

[8] खन्ना प्रसाद अमीन: आदिवासी साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 24

[9] उषा कीर्ति राणावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.): आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 30

[10] वंदना टेटे: आदिवासी दर्शन और साहित्य, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2016, पृ. 34

[11] गंगा सहाय मीणा: आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 1

[12] विशाला शर्मा; दत्ता कोल्हारे: आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 21